IJAER/ Oct-Nov 2012 /Volume-1/Issue-3/Article No-20/ 298-303 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

सामाजिक पृष्ठभूमि एवं साहित्य की परम्परा में स्त्री का स्थान

डॉ० आशुतोष मिश्र
शोध निर्देशक
हिन्दी विभाग
सी०एम०जे०विश्वविद्यालय
राय-भोई, जोरबाट, मेघालय

कॅवर पाल सिंह दौलत
शोधार्थी
हिन्दी विभाग
सी०एम०जे०विश्वविद्यालय
राय-भोई, जोरबाट, मेघालय

स्त्री समाज का आधार है। इस कारण वह इस समाज का महत्वपूर्ण अंग है। स्त्री के ऊपर ही समाज की सम्पूर्ण उन्नति और विकास आधारित होता है। स्त्री की वर्तमान सामाजिक स्थित समाज में आध्यात्मिकता, सामाजिकता, धार्मिकता एवं भौतिक की उन्नति का दपर्ण है। किसी भी समाज का ऑकलन एवं मूल्यांकन उसकी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्थित पर आधारित होता है। स्त्रियों के लिए अलग स्थान की इच्छा रखने वाले स्वामी विवेकानन्द समाज की उन्नति का हकदार उस समाज की स्त्रियों की स्थिति के ऑकलन से होता है। समाज में स्त्रियों की स्थिति जैसी होगी उसी आधार पर समाज के विकास एवं उन्नति का ऑकलन किया जा सकता है कि समाज कितना विकसित है अथवा विकासशील अथवा पिछड़े समाज के अर्न्तगत लाया जा सकता है।

यदि भारतीय इतिहास के पन्नों को देखा जायं तो भारतीय इतिहास में स्त्री के विकास के अनेक पर्दे दिखाई पड़ते हैं। यहॉ नारी महिमामयी देवी दुर्गा है, काली है, तो दूसरी ओर पुरूष प्रधान समाज के द्वारा सताई एवं कुचली गयी अबला है। भारतीय समाज के क्रमागत विकास के अध्ययन द्वारा समाज में नारी की स्थिति से जुड़े कई प्रश्नों के उत्तर ढूँढने का प्रयास किया जा सकता है।

प्राचीन काल अर्थात् वैदिक काल में प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है कि स्त्रियों की स्थिति पुरूष से कम न थी। स्त्रियों को वे सभी अधिकार प्राप्त थे जो एक पुरूष को प्राप्त होने चाहिए। वे आदर्श की प्रतीक मानी जाती थीं। स्त्रियों को पुरूषों के समान ही सम्मान प्राप्त था। स्त्रियों के सामाजिक उत्थान की दृष्टि से वैदिककालीन समाज को स्वर्णिम युग के नाम से जाना जाता है। हिन्दू संस्कृति में भारतीय स्त्रियों की व्याख्या इस प्रकार की गयी है कि वह धरातल के उच्चतम स्तर पर अवस्थित है। स्त्री शक्ति में मातृ-शक्ति के दर्शन का कितना उच्च भाव समाहित है। क्योंकि स्त्रियों को जाया की संज्ञा से भी सुशोभित किया गया है।

वैदिककालीन समाज ने स्त्रियों को अत्यन्त उच्च पद पर आसीन किया है। वैदिककालीन समाज स्त्री को वे सभी अधिकार देने का पक्षधर था जो मनुष्य को प्रकृति द्वारा प्रदत्त होते हैं। वैदिककालीन समाज में स्त्रियों के अधिकारों के प्रति समाज काफी उदार एवं सजग रहता था। इस युग में अनेक तेजस्वी एवं विदुषी, योग्य महिलाओं के उदाहरण मिलते हैं। वृहदारण्यक उपनिषद में वर्णित याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का संवाद स्त्री की बौद्धिकता की ओर संकेत करते हैं-

याज्ञवल्क्य- नहीं, भोग सामग्रियों को लेकर व्यक्तियों का जैसा जीवन होता है, वैसा ही तुम्हारा भी होगा। धन-दौलत से अमरता की आशा करना व्यर्थ है।
मैत्रेयी- तब जिसे लेकर मैं अमर नहीं हो सकती, उसे लेकर क्या करूँगी? आप तो मुझे ऐसा साधन बताइये, जिससे मुझे अमरता प्राप्त हो सकें।

इस युग में स्त्री प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के बराबर थी। स्त्रियों को बौद्धिक विकास करने, शिक्षा ग्रहण करने और अपनी बुद्धि एवं विकास के माध्यम से पुरूषों के साथ साक्षात्कार का पूरा अधिकार था। उसे पुरूष की अर्धांगिनी माना जाता है ऐसा हमारे वर्तमान समाज में ही नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति में मान्य एवं स्वीकृत देवी-देवताओं में भी स्त्री को देवी के रूप में, पुरूष की अर्द्धांगिनी के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। भावनात्मक धरातल पर ही नहीं, व्यावहारिक क्षेत्र में भी स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान दिया गया है। सरस्वती (विद्या की

देवी), लक्ष्मी (धन की देवी), दुर्गा (पराक्रम एवं शक्ति की देवी), रति (सौन्दर्य की देवी), गंगा (पवित्रता की देवी) काली (क्रोध की देवी) सन्तोषी (सन्तोष एवं सुख-शान्ति की देवी) आदि को स्त्री के आदर्श रूप में समाज द्वारा स्वीकार किया गया है। यदि देखा जांय तो हमारे समाज एवं ग्रन्थों में स्त्रियों को सम्मान जनक रूप में पूजा जाता था, नारी की पूजा के अनेक उदाहरण हमारे प्राचीन ग्रन्थों में देखने को मिलते हैं।

वैदिक काल में स्त्रियों को सामाजिक विचरण की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। उस काल में पर्दा प्रथा जैसी कुप्रथा नहीं थी स्त्रियॉं इन बन्धनों से मुक्त थीं वह समाज में स्वतन्त्र रूप में जीवन यापन का अधिकार रखती थीं। वैदिक काल में स्त्रियों के शास्त्रों के अनुरूप ही पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त था। विधवा स्त्री भी तीन मार्गों से विवाह का विधान प्राप्त कर सकती थी-वैधव्य जीवन व्यतीत करें, देवर या निकट सम्बन्धी के साथ पुनर्विवाह या यौन सम्बन्धों को स्वीकार करें अथवा पुनर्विवाह करें। इन तीनों विधानों में से किसी एक विधान के आधार पर वैधव्य को समाप्त कर स्त्री समाज में सम्मान से जीने का अधिकार प्राप्त कर सकती थी।

वैदिक समाज व्यवस्था पितृसत्तात्मक थी। पिता घर का प्रधान होता था। स्त्री उसके अधीन परन्तु माता के रूप में उसका स्थान सर्वोपरि था। उदा, अदिति, पृथ्वी, सरस्वती, उषस्, रात्रि, इड़ा, पिंगला आदि को वैदिक कवियों ने माता के रूप में वर्णित किया है। स्तुति, सिंध, नदी, मेघ, वनस्पति, भूमि, औषधि को माता के रूप में स्वीकार किया गया है। माता के ऑंचल को सुख और शान्ति का आश्रय दिया जाता था। जैसे-

- दासों द्वारा बॉंधकर नदी में फेंक दिया गया दीर्घतमा जब नदी में से सुरक्षित निकल आया तो कृतज्ञता-ज्ञापन में कहता है- 'जब दासों ने दृढ़ता से बॉंधकर फेंक दिया तो सर्वाधिक मातृस्वरूपिणी नदियों ने मुझ निगला नहीं।'
- मृत व्यक्ति को दफनाते हुए भूमि से प्रार्थना की गयी है- 'हे भूमि, इसे ऐसे आच्छादित कर लो, जैसे माता पुत्र को ऑंचल से ढॅंक लेती है।'
- एक ऋषि इन्द्र से कहता है कि-
- 'हे इन्द्र, तू मेरे पिता और कृपण भाई से अधिक उदार दाता है। हे वसु, उदारतापूर्वक धन देने में तू और मेरी माता समान प्रतीत होते हैं।'

वैदिककालीन समाज में पत्नी को परिवार का प्रमुख अंग स्वीकार किया जाता था। 'घर' का केन्द्रबिन्दु 'पत्नी' ही होती है। ऋषि विश्वामित्र ने सोमपान करके हर्षित हुए इन्द्र से प्रार्थना की कि, 'हे इन्द्र, तुमने सोमपान कर लिया है, तुम घर जाओ। तुम्हारे घर में कल्याणी जाया प्रतीक्षा करती है।' धार्मिक क्षेत्र में भी पत्नी को समान अधिकार प्रदान किए गए थे। धार्मिक कृत्यों का सहभागी होना आवश्यक था। पति के बिना भी पत्नी को धार्मिक कृत्य करने और उनमें भाग लेने का अधिकार था। अथर्ववेद में स्त्रियों को **'यज्ञिय'** अर्थात् यज्ञ की अधिकारिणी कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में **'अयज्ञीयो वैष योऽपत्नीका'** एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण में **'अज्ञयों वा एषः योऽपत्नीकः'** कहकर पत्नी रहित पुरूष को यज्ञ का अधिकार न होने का दावा मिलता है। सूर्या-सूक्त में नवविवाहिता के लिए कामना की गयी है कि वह पतिगृह में जाकर गृह की स्वामिनी बने और सभी को अपना वशवर्ती बनाकर देव-पूजा में भाग ले।' विवाह के समय भी माता-पिता दोनों मिलकर कन्यादान करते थे, कन्यादान की यह प्रथा आज भी कायम हैं। हिन्दू धर्म के अनुयायी आज भी अपनी पुत्री के विवाह के समय कन्यादान की रीति को पूर्ण करते है।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि वैदिक काल में स्त्रियों को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया था इसके साथ-साथ उसे पुरूषों के समान ही अधिकार भी प्रदान किए गए थे।

डॉ० राजबली पाण्डे के शब्दों में, 'स्त्री रूप में वह घर की साम्राज्ञी थी और उसके धार्मिक और सामाजिक अधिकार पति के समान थे। पर्दे के भीतर उसे बन्द करके नहीं रखा जाता था उसे घूमने-फिरने की पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी।....'

स्त्रियों की निदा की परम्परा का आरम्भ उपनिषदों से होना प्रारम्भ हो गया था। सामाजिक परिवर्तनों के बीच वैदिककालीन स्वतन्त्र नारी परतन्त्रता की बेड़ियों में बर्धने लगी। पुरूष से स्वतन्त्र नारी के अस्तित्व को समाज ने न केवल नकारा वरन् उसे पुरूष के दासत्व की कैद में बॉंध लिया। मध्यकाल के पूर्वाद्ध में जहॉं भारतीय समाज एक नए युग की ओर बढ़ रहा था। वहीं दूसरी ओर वैदिक काल की नारी के प्रति सम्मान का दृष्टिकोण कम होने लगा। स्त्री के गुणों की जो दिव्यता और ओज वैदिक काल में प्रदान किए गए थे वे सभी अब अपमान के प्रतीक बनते जा रहे थे। उसकी मातृसुलभ वत्सलता, कोमलता और भावुकता, सहृदयता एवं सम्मान उसके अवगुण बनने लगे थे। वैदिक काल की आर्थिक रूप से स्वतन्त्र एवं सबल पत्नी इस काल में पति के ऊपर आर्थिक रूप से निर्भर अब उसकी दासता की शिकार बनने लगी थी। अब वह पुरूष अथवा पति के हाथ की कठपुतली बन गयी थी। उसका मातृत्व तो जैसे एक अभिशाप ही बन गया था। वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल में नारी की स्थिति को महादेवी वर्मा ने मर्मान्तक शब्दों में वर्णित किया है कि, 'पुरूष की सहधर्मिणी थी, पुरूष की अधिकार भावना में बॅंधी अनुगामिनी मात्र नहीं। जैसे-जैसे भिन्न परिस्थितियों में उसकी सामाजिक उपयोगिता घटती गयी, वैसे-वैसे पुरूष व्यक्तिगत अधिकार भावना से उसे घेरता गया। अन्त में यह स्थिति ऐसी पराकाष्ठा को पहुॅंच गयी जहॉं व्यक्तिगत अधिकार भावना से

स्त्री के सामाजिक महत्व को अपनी छाया से ढँक लिया। एक बार पुरूष के अधिकार की परिधि में पैर रख देने के पश्चात् जीवन में तो क्या मृत्यु में भी वह स्वतन्त्र नहीं।' स्त्रियों की इस दयनीय दशा के विषय में मनुस्मृति में परिलक्षित होता है-

'पितारक्षति कौमारे, भर्तारक्षति यौवने।
पुत्रश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।'

कौमार्य अवस्था में पिता स्त्री की रक्षा करता है, युवावस्था में पति, वृद्धावस्था में पुत्र। स्त्री कभी स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं होती।

मध्यकाल में स्त्री की स्वतन्त्रता का पूर्णरूपेण हरण हो गया। प्राचीनकाल में जो धार्मिक कार्य स्त्री की उपस्थिति के बिना अपूर्ण माने जाते थे उनसे स्त्रियों को बहिष्कृत किया जाने लगा। स्त्री को केवल विवाह संस्कारों में भाग लेने दिया जाता था बाकी सभी अधिकारों से उसे वंचित कर दिया गया। मध्यकालीन शास्त्रकारों का मानना था कि विवाह के उपरान्त पति और पत्नी एक दूसरे के पूरक हो जाते हैं अतः स्त्री का पृथक अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है, क्योंकि उसका सर्वस्व पति में ही लीन हो चुका होता है। पत्नी के अस्तित्व को पति में विलीन करके स्त्री की स्वतन्त्रता को ही समाप्त कर दिया गया। इतना ही नहीं इन स्मृतिकारों ने अबलापन, आत्मरक्षा में असमर्थता और वर्णसंकरता को नारी-पराधीनता के कारण बतलाकर उसकी स्वतन्त्रता की संभावना को समाप्त कर दिया गया था। विधवाओं को पति की मृत्यु के बाद ब्रह्मचारिणी बने रहने के लिए कहा गया। उसके प्रति उपेक्षाभाव रखते हुए उसे अमंगला तक कह दिया गया था। मध्यकाल में स्त्री को समाज का सबसे तुच्छ प्राणी की संज्ञा से सुशोभित किया जाने लगा और उसकी स्वतन्त्रता पर पूर्णतया ग्रहण लगा दिया गया था। मध्यकाल स्त्रियों के जीवन का सबसे कठिन काल कहा जा सकता है।

बौद्धकाल में स्त्रियों का स्थान पर्याप्त उच्च था। परन्तु महात्मा बुद्ध के निर्वाण के बाद उत्तर काल में स्त्री की स्थिति गिरती चली गयी। इस काल में नारी के प्रति अनुदार दृष्टिकोण अपनाया गया। बौद्ध-जातक कथाओं में तो नारी को नदी और प्याऊ की संज्ञा देकर सार्वजनिक उपयोग की वस्तु घोषित कर दिया गया।

यद्यपि मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में स्त्रियों की स्थिति में काफी गिरावट आ गयी थी तथापि स्त्री-शक्ति के दर्शन यत्र-तत्र हो जाते थे। स्त्रियों की धर्म-संघों में प्रवेश, मण्डन मिश्र की पत्नी का शंकराचार्य के साथ शास्त्रार्थ, सुक्का का व्याख्यान के रूप में अमृत वर्षा करना आदि ऐसे उदाहरण है जो संकेत करते हैं कि स्त्रियों के पास कुछ अधिकार अभी भी शेष थे। राजपूत नारियों की वीरता एवं देश भक्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं जिसमें स्त्रियों ने राष्ट्र का गौरव बढ़ाने में अपना पूरा सहयोग प्रदान किया था। रानी दुर्गावती का साहस सभी जानते हैं। राजनीति के इस उलट-फेर में हूण और मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारत की सरजमीं पर अपने पैर जमाए। जैसे-जैसे इन विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत की धरती पर अपने कदम रखे वैसे-वैसे ही हमारी धरा की स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर ग्रहण लग गया। इस काल की नारियों की वीरगाथा को इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया है। मुस्लिम काल में स्त्रियों की जितनी अवनति हुई उतनी अवनति अन्य किसी शासन काल में नहीं हुई। मध्य युगीन भारत में तो स्त्रियों को जिस बर्बरता और अमानवीय वातावरण में जीना पड़ा था। वह तो आक्रामकता की पराकाष्ठा थी।

उन्नीसवीं शदी में नवजागरण प्रारम्भ हुआ जिसमें समस्त नारी-जाति के लिए खुशियों के द्वारा खुल गए। नवजागरण का दूसरा नाम ही है जड़ता के विरूद्ध चेतना का जन्म। इसलिए वह स्वतन्त्रता लाने वाली चेतना है। मनुष्य की स्वतन्त्रता का स्फुरण नवजागरण काल में ही हुआ। वास्तव में वर्तमान काल में पराधीनता के प्रति प्रतिक्रिया थी। स्वार्थ, अनाचार जब सीमित होते हैं तब उनके प्रति प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। आधुनिक काल उन अत्याचारों के प्रति प्रतिक्रिया ही है। समाज सुधारकों, सामाजिक संस्थाओं ने सामाजिक अन्याय के खिलाफ विरोध में अपने स्वर मुखरित किए। सामाजिक प्रयासों के अलावा स्त्रियों में नवजागृति की लहर भी इस युग की देन है। राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द, महात्मा गॉधी, महादेव गोविन्द रानाडे, महर्षि कर्वे आदि समाज सुधारकों ने स्त्रियों के उत्थान एवं उनका सम्मान वापस दिलाने हेतु विभिन्न प्रयास किए जिससे स्त्रियों को इन बेड़ियों से मुक्त कराकर सम्मानजनक जीवन जीने योग्य बनाया जायं।

इस क्षेत्र में राजा राममोहन राय ने सन् १८१८ में सतीप्रथा का जमकर विरोध किया, जिसके प्रयत्नों के फलस्वरूप सन् १८२९ में लॉर्ड विलियम बैंटिक को सती प्रथा गैर कानूनी घोषित करनी पड़ी। राजा राममोहन राय ने बौद्धिक स्तर पर सतीप्रथा की अवधारणाओं और सामाजिक मान्यताओं को तर्क-बुद्धि से प्रभावहीन बनाकर इस अन्याय के खिलाफ मानवीय संवेदनाओं को संपुष्ट किया।

स्त्री स्वातन्त्र्य की पृष्ठभूमि में स्त्री संगठनों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वाधीनता पूर्वकालीन नारी चेतना स्वतन्त्रता संग्राम का रूप धारण कर चुकी थी। इसने स्त्रियों में एक अलख जगाकर उन उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने का कार्य किया परन्तु

पूर्णतः स्त्रियों में अपने अधिकारों, स्वतन्त्र अस्तित्व, व्यक्तित्व के प्रति सजगता स्वतन्त्रता के पश्चात् ही आयी। स्त्रियों की स्वतन्त्रता और समानता से जुड़े अनेकों मुद्दों को लेकर विभिन्न स्त्री-संगठनों की स्थापना हुई जिनमें भारतीय महिलाओं की राष्ट्रीय परिषद, अखिल हिन्द महिला परिषद, दक्षिण शिक्षा मण्डली, एन०एफ०आई०डब्ल्यू०, नारी प्रगतिमंच, प्रगतिशील महिला संगठन, महिला दक्षता समिति, बंगमहिला समाज, अघोरी कामिनी नारी-समिति, सतारा अबलोन्नति सभा, महिला सेवा समाज बैंगलूर, भारतीय महिला परिषद बनारस, प्रयाग महिला समिति-इलाहाबाद, अखिल भारतीय महिला सम्मेलन, वीमेन्स इण्डियन एसोसिएशन, पुरोगामी स्त्री संगठन-पुणे, नारी अत्याचार विरोधी मंच, स्त्री आधार केन्द्र, सहेली, सेवा आदि अनेकों स्वयं सेवी संगठन महिलाओं की स्वतन्त्रता एवं उनके अधिकारों के संरक्षण हेतु निरन्तर कार्य कर रहे हैं। इनमें से कुछ संगठन कार्यशील थे और कुछ स्त्री-जीवन से जुड़ी वैचारिक चर्चाओं और बहसों का मंच। आजादी से पूर्व बहुत से ऐसे क्षेत्र थे जिनसे सम्बन्धित मुद्दों पर खुली बहस हो रही थी और ये स्वयंसेवी संगठन निरन्तर उनके प्रति कार्यरत थे।

१. शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना जिससे अधिक से अधिक स्त्री शिक्षा का विकास किया जा सके।
२. आत्म सहायता जिससे स्त्रियों को स्वावलम्बी बनाया जा सके।
३. हिन्दू स्त्रियों की जीवन प्रणाली के लिए अलग से एक संहिता का निर्माण करना जिससे स्त्रियों को उनके अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया जा सके।
४. वर्तमान भारतीय परिस्थितियों में भारतीय नारियों के स्थान को निर्धारित किया जा सके।

- बाद में स्त्री आन्दोलन राष्ट्रीयता से जुड़े और उनके मुद्दे द्विस्तरीय हुए। एक स्वयं स्त्री के लिए समानता और दूसरा देश की आजादी से जोड़ा जा सके।

समाजसुधार आन्दोलनों के केन्द्र में सरकने पर जब स्त्री चेतना राष्ट्रवादी चेतना से जुड़ी।तब इसमें उनके मुद्दे अस्तित्व में आये जैसे-

- भारतीय स्त्रियों को भी पुरूषों के समान ही समस्त एवं समान अधिकार प्रदान किए जायं।
- लैंगिक असमानता को समाप्त किया जायं और समानता स्थापित करने हेतु प्रयास किए जायं।
- अर्थोपार्जन एवं धन कमाने की दिशा में प्रयास किए जाने चाहिए साथ ही अधिक से अधिक स्त्रियों को व्यवसायों से जोड़ा जाना चाहिए जिससे उनको आर्थिक रूप से सबल बनाया जा सके।?
- ऐसी स्त्रियॉं जो श्रमिक के रूप में कार्य कर रही हैं उनकी समस्याओं का समाधान कर उनको एक संबल और एक स्वर दिया जाना चाहिए।

आजादी के पश्चात् भारतीय संविधान की रचना करते समय स्त्रियों के लिए विशेष अधिकारों की व्यवस्था की गयी जिसमें स्त्रियों को भी पुरूषों के समान ही अधिकार प्रदान किए गए। **'हिन्दू कोड बिल'** पारित किया गया। स्वतन्त्रता के पश्चात् मानसिक सन्तोष के साथ-साथ आश्वासनों के बीच **'स्त्री-मुक्ति-आन्दोलनों'** में एक विशेष प्रकार की शान्ति सी छा गयी। क्योंकि अब साम्राज्यवादियों की दमनकारी नीतियों का अन्त होता प्रतीत हो रहा था। लेकिन स्वतन्त्रता के बाद स्त्रियों के अधिकारों और सामाजिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। ऐसी स्थिति को देखकर फिर से स्त्री आन्दोलनों ने सक्रिय रूप धारण कर लिया। अब इस क्षेत्र में सक्रियता आ गयी। इस समय ऐसे अनेक आन्दोलनों को नवीन रूप देकर पुनः संचालित किया गया जिससे स्त्री स्वतन्त्रता को बनाए रखा जा सकें और सामाजिक अथवा अन्य किसी भी रूप में उनके अधिकारों का हनन न हो सकें। साथ ही स्त्रियों की पुरूषों के दमनकारी अन्यायों से सुरक्षित रखा जा सके। स्त्रियों के स्वतन्त्रता और अधिकारों के संरक्षण हेतु अनेक आन्दोलन चलाए गए जो निम्नवत् थे-

- शराब बन्दी आन्दोलन अथवा शराब की खुली बिक्री पर रोक लगायी जायं।
- दहेज प्रथा का विरोध क्योंकि दहेज समाज का एक ऐसा जहर बन गया था जिससे बहुत सी स्त्रियों को अपनी जान गॅवानी पड़ रही थी।
- भूमि आन्दोलन जिसमें भूमि में स्त्रियों को भी अधिकार प्रदान किए जायं और वह भी पैतृक भूमि में अपने हक की अधिकारी होंगी।
- घरेलू हिंसा के विरूद्ध आन्दोलन। घरेलू हिंसा से तात्पर्य घर के अन्दर स्त्रियों के साथ होने वाले शारीरिक एवं मानसिक अत्याचारों से उनको सुरक्षित करना था।
- यौन उत्पीड़न एवं बलात्कार के विरूद्ध आन्दोलन अर्थात् स्त्रियों की यौन शोषण एवं बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों से बचाया जायं।
- स्वास्थ्य, सहायता सेवा एवं रोजगार केन्द्रों की स्थापना जिनमें स्त्रियों के स्वास्थ्य की पूर्ण रूप से देखरेख एवं रोजगार उपलब्ध कराने हेतु रोजगार केन्द्रों की स्थापना की जायं जिससे स्त्रियों को उनकी योग्यतानुसार रोजगार उपलब्ध कराकर उन्हें आर्थिक रूप से मजबूती प्रदान की जायं।

- स्त्रियों के लिए कार्यशालाओं का आयोजन किया जायं जिससे उनमें आत्मविश्वास एवं जागरूकता लाकर सामाजिक मजबूती प्रदान की जा सके।
- स्त्रियों की रचनात्मक क्षमताओं की अभिव्यक्ति हेतु मंच प्रदान किया जा सके। जिससे वे अपनी क्षमताओं और योग्यताओं का प्रदर्शन कर सकें।
- नुक्कड़ नाटकों एवं कला विधाओं को स्त्री संघर्ष के माध्यम के रूप में प्रस्तुत करना। नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से किया गया प्रदर्शन प्रत्यक्ष रूप में होने के कारण स्त्री तथा पुरूषों मे वैचारिक जागरूकता उत्पन्न की जा सके।
- विभिन्न वर्गों की स्त्रियों के बीच में एकरूपता और समानता की स्थापना करना।
- स्त्री-सशक्तिकरण पर बल दिया जांय जिससे स्त्रियों को सबल और सक्षम बनाकर पैरों पर खड़ा किया जा सकें और समाज के इस वर्ग को आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक स्थिरता हेतु सक्षम किया जा सके।
- झोपड़-पट्टियों में रहने वाली स्त्रियों में जागरूकता लाने हेतु सुधार कार्यक्रमों का आयोजन किया जायं जिससे स्त्रियों के साथ-साथ इस वर्ग में रहने वाले पुरूषों का भी मानसिक और बौद्धिक विकास सम्भव बनाया जा सके।
- प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों का आयोजन कर अशिक्षित एवं निरक्षर स्त्रियों को पढ़ाया जा सके जिससे वे अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति सजग हो सकें।
- विभिन्न प्रकार के साक्षरता कार्यक्रमों का आयोजन किया जायं जिससे शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर जनसंख्या को शिक्षित कर सबल बनाया जा सके।

अत्यन्त सक्रियता के साथ सन् अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध में 'स्त्री-मुक्ति-आन्दोलन' वर्ग और भेदभाव की बीच पिसते चले गए। संगठनों में राजनीति आ जाने से उनका राजनीतिकरण हो गया। गुटबाजी, क्षेत्रवाद जैसे असामाजिक तत्वों का इन आन्दोलनों में प्रवेश हो जाने के कारण इनका विकास अवरूद्ध हो गया। असामाजिक तत्वों के प्रवेश के कारण इनके अन्दर विचारधाराओं में मतभेद उत्पन्न होने लगे। इन आन्दोलन का जो उद्देश्य निर्धारित किया गया था वह उद्देश्य पूरी तरह से अपनी जगह से पलट गया और इनका रूख प्रतिकूल दिशा की ओर प्रवाहित होने लगा।

भारतीय संविधान के लागू होने के पश्चात् तो भारतीय नारियों के अधिकारों को और भी संरक्षण प्रदान किए जाने लगे हैं अब तो आवश्यकतानुसार संविधान में आवश्यक संशोधन लगातार किए जा रहे हैं और स्त्रियों को अधिक से अधिक अधिकार प्रदान कर उनका सबलीकरण किया जा रहा हैं। हमारा इतिहास साक्षी है कि स्त्रियों के उत्थान एवं पतन की लम्बी गाथा देखने को मिलती है। परन्तु पहले की तुलना में स्त्रियों की स्थिति में काफी सुधार आया है और साथ ही उनकी स्थिति और अधिक मजबूती प्राप्त करती जा रही है। स्वतन्त्रता के पश्चात् तो नारी के भाग्य ही उदय हुए हैं। भारतीय संविधान में तो स्त्रियों को पूर्ण समानता ही नहीं मिली बल्कि संविधान की पन्द्रहवीं और सोलहवीं धारा लाकर स्त्रियों को सरकारी एवं गैर सरकारी नौकरियों में समानता के अवसर भी प्रदान किए गए हैं। पुत्र और पुत्री को पिता की चल-अचल सम्पत्ति में समान भागीदार भी बनाया गया है। १९५५ के हिन्दू कोड बिल और हिन्दू विवाह एक्ट में बहु-विवाह कानून आदि को भी निषिद्ध एवं गैरकानूनी घोषित कर दिया गया है जिससे स्त्रियों को सामाजिक रूप में स्थायीकरण प्रदान किया जा सकें स्त्री और पुरूष के तलाक की प्रक्रिया भी समान कर दी गयी है। अब कानूनी रूप से स्त्री अपने पति द्वारा किए जा रहे शारीरिक एवं मानसिक अत्याचारों और शोषण से बचने के लिए कानूनी तौर पर पृथक्कीकरण हेतु कार्यवाही करने के लिए स्वतन्त्र है। वह स्वयं को शोषण से बचा सकती है कानून में ऐसी व्यवस्था दी गयी है। महिलाओं में वैश्यावृत्ति निरोधक कानून १९७८ भी महिलाओं को शारीरिक शोषण से मुक्ति दिलाता है। कोठारी आयोग ने स्त्रियों के उत्थान के लिए शिक्षा की उपादेयता को स्वीकार कर 'नारी-शिक्षा' को एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम लागू किया है। शिक्षा ने स्त्री के लिए जीवन के नवीन द्वारों का निर्माण कर उसे समाज में पुरूषों के समान ही जीने के अधिकार प्रदान किए हैं। आज की स्थिति तो यह है कि भारतीय संसद में भी ३३ प्रतिशत महिलाओं के आरक्षण का बिल पास कर स्त्रियों के देश के लिए कानून बनाने और उनमें आवश्यक संशोधन करने का भी दायित्व प्रदान किया गया है। यही है जिससे स्त्री स्वातन्त्र्य को प्रत्यक्ष रूप में निरीक्षित किया जा सकता है और स्त्रियों को समाज की गतिशीलता और विकासक्रम की मुख्य धारा में जोड़ते हुए उसे समाज का एक अभिन्न अंग बनाया जा सकता है।

यदि देखा जायं तो बीसवीं सदी में न केवल भारतवर्ष में बल्कि सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं की स्वतन्त्रता के लिए कार्य किए जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रयासों ने स्त्री-मुक्ति संघर्ष को 'मानव अधिकारों' के प्रश्न से जोड़कर स्त्री और पुरूषों को समान अधिकारों, सामाजिक हिस्सेदारी और विकास की धारा में जोड़कर परिभाषित किया है। इस ऐतिहासिक, राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय परिदृश्य के मध्य वर्तमान युग में भारतीय स्त्री अनेकों क्षेत्रों में आगे बढ़ रही है। चिकित्सा, विज्ञान, अभियान्त्रिकी, सिनेमा, खेलकूद, शिक्षा ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहॉ पर स्त्री ने अपने पैर न रखे हों। आज की युवतियॉ पिछले समय की युवतियों की तुलना में कहीं अधिक साहसी और मजबूत

हुई हैं। आज की नारी अपना जीवन अपनी इच्छा से जी रही है। इसके कई कारण है जिन्होंने स्त्रियों को स्वतन्त्र जीवन जीने में बाधक बनते जा रहे है-

- नारी-स्वतन्त्रता, नारी-मुक्ति की बातें करने वाले आज आधुनिकता और उदारता दिखाने वाले जब उनकी अपने घर की बहु और बेटियों की बातें चलती है तो उन्हें स्वतन्त्रता देने के नाम पर चुप्पी साध जाते हैं। यही स्थिति समाज के प्रत्येक वर्ग की है चाहे वह कितना ही शिक्षित हो, आर्थिक रूप में कितना ही सबल हो, परन्तु सोच में परिवर्तन लाने में सक्षम नहीं हो पाया है।
- आज भी समाज स्त्रियों को पुरूष के बराबर खड़ा करने में हिचकता है जबकि बातें समानता और दायित्वों की करता है इसका मुख्य कारण है कि मध्यकाल में समाज को पुरूष प्रधान समाज में तब्दील कर दिया गया था। जो धारणा मध्यकाल में बनी थी उससे अभी भी पुरूष मानसिक रूप से स्वतन्त्र नहीं हो पाया है।
- स्त्री स्वातन्त्र्य के नाम पर दोगली धारणा, दोगली सोच, दोहरा दृष्टिकोण रखने और उसका प्रयोग करने की स्थिति जस की तस बनी हुई है। विभिन्न कानूनों का निर्माण होने के पश्चात् भी स्त्रियों के प्रति धारणा में अभी उतना परिवर्तन नहीं आया है जितने की अपेक्षा की गयी थी।
- स्वतन्त्रता को लेकर नारी समाज स्वयं भी दो वर्गों में बँटा हुआ हैं। पहला वर्ग तो वह है जिसमें नारी ने नारीत्व, सतीत्व, शील और मर्यादा के न जाने कितने ही उदाहरण समाज के समक्ष प्रस्तुत किए हैं साथ ही स्वयं को कितने ही आवरणों से ढँक रखा हैं मुक्ति की कामना और विवशता की कैद से बाहर निकलने का आग्रह दोनों में ही दिखाई नहीं देता है। दूसरा वर्ग जिसमें स्वतन्त्रता के नाम पर सिर्फ आधुनिक सभ्यता बनाई है एवं स्वतन्त्रता को स्वच्छन्दता की विकृति में बदल डाला है। इस वर्ग ने स्वतन्त्रता को परतन्त्रता से भी घिनौना बनाने का प्रयास किया है। इसी वजह से स्वतन्त्रता का अर्थ कुरूपित होता जा रहा है।
- आम भारतीय स्त्रियों के उत्थान की आवश्यकता को अभी तक भी पूर्णरूप से आत्मसात् करने के प्रयास सफल नहीं हो पाये हैं।
- शिक्षित स्त्रियों की स्थिति भी परतन्त्र स्त्रियों के लगभग समान ही है। इनमें से कुछ स्त्रियॉं तो आज भी अपना जीवन दूसरों के अधीन ही जी रही हैं। उन्होंने अभी तक भी अपने अधिकारों को न तो पहचाना है और न ही उनका प्रयोग ही उचित ढंग से कर पा रही हैं।
- स्त्री की स्वतन्त्रता को लेकर अनेकों कानूनों का निर्माण किया गया है परन्तु इसके बावजूद भी वह अपनी विवशताओं और यातनाओं से अभी तक भी बाहर नहीं निकल पायी है। क्योंकि संविधान में स्त्रियों की रक्षा हेतु कानूनों का निर्माण तो कर दिया गया है परन्तु स्वयं को इन कानूनों के अधीन लाने की समझ और सामर्थ्य अभी भी स्त्रियों में नहीं आयी है। इसीकारण आज भी स्त्रियों की स्थिति में कोई विशेष सुधार सम्भव नहीं हो सका है।
- समाज के एक बड़े वर्ग में तो जागरूकता आयी है परन्तु ऐसे परिवारों की संख्या बहुत कम है। जहॉं स्त्रियॉं अपने निर्णय स्वयं ले सकें। आज भी सामाजिक मूल्यों के तहत आत्मनिर्भर, शिक्षित युवतियॉं माता-पिता द्वारा थोपे गए निर्णयों पर विवश हैं। आज भी समाज में स्त्री मुक्ति के इस दौर में भी विवाह जैसी पारम्परिक रीति का विरोध नहीं किया जा रहा है। इस परम्परा के लिए निर्णय लेने का अधिकार आज भी माता-पिता के पास ही है।

कुल मिलाकर यह स्थिति है कि आज की और की कहानी में मध्यकाल की औरत की कहानी में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। केवल कुछ ही स्त्रियॉं ऐसी है जो शिक्षित होने के साथ-साथ इस अमानुषिक व्यवहार, अन्याय, शोषण और अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठा रही हैं परन्तु इनका प्रतिशत नगण्य ही है। अगर स्थानीय प्रतिनिधि मण्डल और सरकारी तन्त्र स्त्रियों को सहयोग करे तो बनाए कानून भलीभॉंति लागू हो सकेंगे और समाज में परिवर्तन भी दृष्टिगोचर हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका : डॉ० मैनेजर पाण्डे, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला।
२. स्त्रीत्व का मानचित्र : अनामिका, पहला संस्करण, साराशं प्रकाशन, दिल्ली।
३. स्त्री संघर्ष का इतिहास : राधा कुमार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
४. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श : जगदीश चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली।
५. स्त्री और पराधीनता : जॉन स्टुअर्ट मिल, पहला संस्करण, संवाद प्रकाशन, मेरठ।
६. स्वातन्त्र्योत्तर कथा लेखिकायें : उर्मिला गुप्ता, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली।